अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

पत्रांकःमेमो / अ0बौ0के0 / 03 / 2020 **दिनांक 17.04.2020**

आज हम कोरोना संकट पर जैन विचारों के परिप्रेक्ष्य में विवेचन करने का प्रयास करेंगे।

जैन दर्शन इस मत को स्वीकार नहीं करता है कि शरीर ही आत्मा या वास्तविक मनुष्य है। वे शरीर एवं आत्मा दोनों के भेद को स्पष्टतः स्वीकार करते हैं और ऐसे सभी सिद्धान्तों का निषेध करते हैं जो शरीर एवं चेतना की एकता का प्रतिपादन करते है। जैन दर्शन गुणों जैसे चेतना, सुख, स्मृति, संदेह आदि के आधार पर आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है और कहते है कि शरीर भी एक यन्त्र–मशीन है और जिस प्रकार किसी भी यन्त्र–मशीन को चलाने के लिए एक चालक की आवश्यकता होती है **ठीक वैसे ही शरीर रूपी मशीन के संचालन हेतु भी हेतु कोई न कोई चालक होना चाहिए और इसी चालक को वे आत्मा के रूप में मानते है** क्योंकि जब तक यह चालक शरीर से युक्त रहता है तब तक वह क्रिया करता रहता है। इतना ही नहीं हमें विभिन्न विषयों का ज्ञान भी होता है। प्रश्न यह है कि यह ज्ञान कौन प्राप्त करता है। क्या इन्द्रियाँ स्वयं ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है? क्या वस्तुतः आखें देखती है या कान सुनता है आदि? स्पष्ट है कि ज्ञान में इन्द्रियों का निश्चित ही योगदान है। ***इंद्रियां क्षणिक, आणविक, असम्बद्ध, अर्थहीन सूचनाओं, संवेदनाओं को ग्रहण करके उस केन्द्र, सत्ता तक पहुँचाती हैं और वही इन्हें सश्लेषित करके सार्थक ज्ञान के रूप में परिणत करता है। जैन इसी केन्द्र या सत्ता के रूप में आत्मा को स्वीकार करते है।***

जैन दर्शन जिस रूप में 'आत्मा' की सत्ता स्वीकार करता है उससे स्पष्ट है कि वह मनुष्य स्वरूप की विवेचना हेतु शरीर एवं चेतना दोनों को मानता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य की सम्यक समझ तभी विकसित हो सकती है जब हम इन दोनों के संदर्भ में मनुष्य को समझे। आज के संकट की अवस्था हम विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार को मनुष्य के स्वरुप के निर्धारक दोनों तत्वों–शरीर और चेतना के संदर्भ में समझने का प्रयास करेंगे।

लेकिन जब हम जैन दर्शन के बन्धन की अवधारणा को देखते है तब मानव स्वरूप के सम्बन्ध में इसके विचार प्रत्ययवादी की श्रेणी में रखे जा सकते है। जैन 'आत्मा' या चेतना की सांसारिक अवस्था को 'जीव' कहते है। जिसमें प्राण है तथा जिसमें शारीरिक, मानसिक एवं इन्द्रिय जन्य शक्तियाँ होती है। शुद्ध नय के अनुसार जीव विशुद्ध ज्ञान, तथा दर्शन या निर्विकल्पक एवं सविकल्प ज्ञान रहता है। लेकिन कर्म के प्रभाव से 'जीव' पाँच भाव प्राणों–औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक एवं परिमाणिक से युक्त हो जाता है, फलस्वरूप उसका परिशुद्ध स्वरूप छिप जाता है और वह ''भावदशापन्न प्राण'', 'द्रव्य रूप' में परिणत होकर 'पुद्गल' रूप में व्यक्त होकर 'संसारी' कहलाता है।

जैन दर्शन मानता है कि 'जीव' की सभी क्रियाएँ उसके द्वारा किये गये कर्मो के परिणाम है। वस्तुतः 'जीव' अपने स्वभाव से, शुद्ध दृष्टि से 'अनन्त दर्शन' एवं 'अनन्त सामर्थ्य' आदि गुणों से युक्त होता है जिसकी अभिव्यक्ति उसके 'आवरणीय कर्मो' के प्रभाव के कारण नही होती है। जैन दर्शन जीव में दो ही

मुख्य गुणों 'चेतना' या 'अनुभूति' तथा उपयोग (चेतना के फल) को स्वीकार करता है। उपयोग के दो प्रकार होते है (1) ज्ञानोपयोग जिसे सविकल्पक ज्ञान एवं (2) दर्शनोपयोग जिसे निर्विकल्पक ज्ञान कहा गया है।

कर्मो के कारण ही 'जीव' बंधन में पड़ता है और इस अवस्था में भी भले ही उसे सम्यक् दर्शन न रहे लेकिन किसी न किसी प्रकार का ज्ञान अवश्य रहता है। कर्मो के क्षय से जीव बंधन मुक्त होता है और उसमें सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। परिणाम के प्रभाव से अथवा किसी विशेष शक्ति के अनुग्रह से जीव ***'सम्यक ज्ञान' अपने वास्तविक स्वरूप को अनुभूत करता है।*** दूसरे शब्दों में ***जैन दर्शन 'अजीव' या 'जड़ पदार्थ' वियुक्त सत्ता जिसमें चेतना होती है, को 'जीव' या मानव स्वरूप के रूप में स्वीकार करता है।***

जैन दर्शन में 'मानव स्वरूप' को समझने में उनके द्वारा विश्लेषित मन, लेश्या एवं कषाय प्रत्ययों की सहायता की जा सकती है जिसकी तुलना मानव स्वरूप के वस्तुवादी विवेचना से की जा सकती है।

मन–

जैन दर्शन की दृष्टि में 'मन' आत्मा के अनुभव या संवेदन के लिए एक साधन मात्र है। भले ही इसका कार्य इन्द्रियों के समान है लेकिन इसे इन्द्रिय नहीं माना जा सकता है क्योंकि इन्द्रियाँ एकनिष्ठ होती है लेकिन मन सर्वार्थग्राहक होता है। इसका क्षेत्र असीम है, क्षण भर में यह कहीं भ्रमण कर सकता है। महावीर के अनुसार यह जड़ एवं चेतना दोनों है। मन के जड़ या पौदगालिक स्वरूप को द्रव्यमन एवं चैतन्यमय स्वरूप को भाव मन कहा गया है। द्रव्यमन एवं योग दर्शन के चित्त के समानता देखी जा सकती है जिसका निर्माण जड़ तत्त्वों से है जबकि भावमन आत्मा की चिन्तन या मनन की शक्ति के रूप में होता है। मनुष्य की किसी भी मानसिक क्रिया दोनों के सहयोग से ही सम्पन्न हो सकती है।

मनुष्य के जीवन के समस्त कार्य–व्यापार, चिन्ता, मनन, इच्छा, स्नेह, घृणा, प्रेम, तर्क आदि इसी पर निर्भर होते है। इतना ही नही यही मनुष्य के विकास एवं पतन का भी कारण है। इसी के कारण जीवन में सक्रियता एवं निष्क्रियता आती है। इसके अर्थ यह नही है कि मन पर विजय नही प्राप्त किया जा सकता है। मन दुर्जय अवश्य है लेकिन अजेय नही है। मन को धार्मिक शिक्षाओं द्वारा जीता जा सकता है। ***शयद यही कारण है कि आज हमें लाकडाउन की स्थिति में पुनः एक बार रामायण और महाभारत जैसे सीरियल को देखने का अवसर प्राप्त हो रहा है।*** जैन दर्शन में हमें वही शिक्षाएँ प्राप्त होती है जो हमें मन को नियंत्रण में रखने की सामर्थ्य प्रदान करती है। मन के नियंत्रण से न केवल हमारी पाँचों इन्द्रियाँ वश में हो जाती है बल्कि विषय वासना का क्षय होने से हमारी चंचलता भी दूर हो जाती है। हमें एक प्रकार की ऐसी अपूर्व शांति, आनन्द की अनुभूति होती है जो किसी भी व्यक्ति को अपने घर पहुँचने पर होती है। **इसी स्थिति में मनुष्य को अपने 'घर'–स्वभाव की प्रतीति होती है और वह आनन्द से भर उठता है।**

लेश्या–

मानव स्वरूप को समझने हेतु जैन दर्शन जिस दूसरे प्रत्यय का सहारा लेता है उसे वह 'लेश्या' शब्द जिसका साधारण अर्थ विचार, मनोवृत्ति या तरंग होता है। जैन दर्शन का यह प्रत्यय मानव स्वरूप की सम्यक् समझ हेतु अत्यंत सहायक है। जैन दर्शन यह जानने का प्रयास करता है, मानसिक वृत्तियों का वर्ण कैसा है, इन विचारों को कितने वर्ग में विभक्त किया जा सकता है तथा इनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है? भारतीय चिन्तन की यह मान्यता है कि प्रकृति के तीन गुण सत्व, रज् एवं तम जिनका वर्ण क्रमशः श्वेत, लाल एवं काला है, सर्वत्र सृष्टि एवं विचारों में, विद्यमान है।

जहाँ आधुनिक व्यवहारवादी चिंतकों ने मानव स्वरूप की विवेचना हेतु स्थूल कारकों का प्रयोग किया है, वहीं जैन चिन्तकों की दृष्टि में मन के विचारों के वर्ण होते है यथा श्वेत, श्याम और कभी मिले हुए वर्ण जो हमारी आत्मा (स्वरूप) को ठीक उसी प्रकार प्रभावित एवं आच्छादित करते है। जिस प्रकार किसी भी स्फटिक मणि के समक्ष जो भी रंग होता है, मणि भी उसी के समान दिखाई देने लगती है। आत्मा (मनुष्य) को स्फटिक मणि के समान माना गया है, इसलिए मन के विचारों का वर्ण इसे प्रभावित एवं आच्छादित कर देते है, मन में उठने वाले विचारों को वर्ण का निर्धारण उनके शुभाशुभ परिणाम के आधार पर किया गया

है। जैन दर्शन में हमें छह प्रकार के लेश्याओं का वर्णन मिलता है (1) कृष्ण लेश्या (2) नील लेश्या (3) कापोत लेश्या (4) पीत लेश्या (5) पद्य लेश्या एवं (6) शुक्ल लेश्या।

जैन आगम में इन लेश्याओं को समझाने एक अत्यंत सुन्दर उदाहरण मिलता है। इस उदाहरण से मानव स्वरूप को समझने में लेश्या प्रत्यय कितना सहायक है, स्वतः स्पष्ट हो जाता है। जैन चिंतन छह ऐसे व्यक्तियों का उदाहरण देते है जो जामुन खाने जाते है; इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु छहों व्यक्तियों के मन में कैसे विचार उठते है इसी के सहारे जैन दार्शनिकों ने मानव स्वरूप को समझने का प्रयास किया है :

(अ) एक व्यक्ति कहता है कि यह जामुन का पेड़ मिल गया है इसे काट कर जमीन पर गिरा दो और जितना जामुन खाना चाहो, खा जाओं।

(ब) दूसरा व्यक्ति कहता है कि पेड़ काटने का क्या लाभ, मोटी–मोटी डालें काट लें और जामुन खा लें।

(स) तीसरा व्यक्ति कहता है डाल न काट कर टहनियाँ काटी जाय।

(द) चौथा कहा है टहनीं भी क्यों काटी जाय क्यों न फलों के गुच्छे ही तोड़ लें।

(ङ) पॉचवे व्यक्ति ने कहा कि गुच्छे तोड़ने से अच्छा है कि हम पके जामुन तोड़ ले।

(च) छठें व्यक्ति ने कहा कि यह सब करने की क्या आवश्यकता है, पके जामुन नीचे गिरे हुए हैं उन्हीं को उठा कर खा लिया जाय।

उपर्युक्त छः व्यक्तियों के मन 'जामुन खाने' के तथ्य के सम्बन्ध में उठे हुए विचार निश्चित ही ***उनके 'स्वभाव' के द्योतक है क्योंकि उनके इन्हीं विचारों ने उनके वास्तविक स्वभाव*** (सत्, चित्, आनन्द) को आच्छादित कर दिया है। इन्हीं छह विचारों के आधार जैन चिन्तक छह प्रकार के लेश्याओं–विचार तरंगों का वर्णन करते है। हम जानते है कि प्रत्येक ***व्यक्ति के मन में नाना प्रकार के विचार उठते रहते है जिनके अनुरूप व्यक्ति न केवल कार्य करता है बल्कि उसके स्वभाव की भी झलक प्राप्त होती है।***

इन लेश्याओं के अनुरूप व्यक्ति के मूल स्वभाव में क्या–क्या परिवर्तन होते है और जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में कौन–कौन से गुण हो जाते है इसके सम्बन्ध में जब स्वामी गौतम के प्रश्न करने पर महावीर जो उत्तर देते हैं, इस पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है :

(1) कृष्ण लेश्या :

महावीर कहते है कि हे गौतम, कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति के विचार क्षुद्र, कठोर और हिंसक होते है। वह स्वार्थी एवं अविवेकी होता है तथा भोग लिप्सा–इन्द्रियों की संतुष्टि में ही लिप्त रहता है। उपर्युक्त उदाहरण का प्रथम व्यक्ति इसी श्रेणी का है। सांख्य दर्शन के अनुसार तामसी प्रवृत्ति के व्यक्ति इसी कोटि के माने जा सकते है।

आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो उन सभी लोगों को जो कोरोना संकट से हमें बचाने हेतु संघर्षरत हैं जैसे डाक्टर, अन्य सहयोगी स्वास्थ्यकर्मी एवं पुलिस कर्मियों के साथ, दुर्व्यवहार कर रहे है और उन पर पत्थर फेंक रहे हैं और ऐसे सभी लोगों को जो इस समय स्वास्थ्य संबंधी दिशा निर्देशों का स्पष्ट उल्लंघन कर रहे हैं; को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति ही कोरोना महामारी की विकटता के उत्तरदायी है। **ऐसे व्यक्तियों की मानव प्रगति सम्बन्धी विचार के केन्द्र में 'परस्पर–तंत्रता' की अवधारणा न होकर मात्र मनुष्य को ही किसी भी कीमत पर ऐसे भौतिक संसाधन उपलब्ध कराने की होती है जिससे उसे शारीरिक एवं ऐंद्रिक सुख प्राप्त हो सके।**

(2) नील लेश्या–

ऐसे व्यक्ति प्रथम प्रकार के व्यक्ति से कुछ अच्छे होते है क्योंकि इन्हें अपने संरक्षण के साथ–साथ दूसरों के संरक्षण का भी ध्यान होता है। ऐसे सभी लोग जो कोरोना संकट में रोजगार रहित भूख एवं अभाव से ग्रस्त सभी मनुष्यों की निःस्वार्थ सेवा तमाम विपरीत परिस्थितियों में कर रहे हैं, को रखा जा सकता है।

(3) कापोत लेश्या–

ऐसे व्यक्ति भले ही कठोर वाणी बोले लेकिन इनमें दूसरों की रक्षा की भावना भी होती है। इनमें रजस एवं तमस दोनों की प्रधानता होती है। उपर्युक्त उदाहरण में तीसरे प्रकार के व्यक्ति में इसकी झलक देखी जा सकती है। वर्तमान कोरोना संकट के संदर्भ में तमाम ऐसे सुरक्षा कर्मियों को जो लाकडाउन का पालन न करने वालों के प्रति कठोर विधिक कार्रवाई करने को विवश हैं, को रखा जा सकता है।

(4) पीत लेश्या–

ऐसा व्यक्ति दयालु, चंचलता से रहित, इंद्रियों का निग्रह करने वाला होता है। इनमें सतोगुण की प्रधानता होती है। उदाहरण में चौथे प्रकार का व्यक्ति इसी श्रेणी का माना जा सकता है।

(5) पद्म लेश्या–

यह व्यक्ति जितेन्द्रिय, मृदुभाषी तथा अपनी उपस्थिति मात्र से दूसरों को आनन्द प्रदान करने वाले होते है। उपर्युक्त उदाहरण का पॉचवा व्यक्ति इसी श्रेणी का माना जा सकता है। इनमें सतोगुण की और अधिक प्रधानता होती है। आज के परिप्रेक्ष्य में ऐसे सभी लोग जो हमें कोरोना के प्रति जागरुक एवं सजग करने के प्रति प्रयत्नशील है, इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

(6) शुक्ल लेश्या–

ऐसे व्यक्ति सुख–दुःख में समान भाव रखने वाले, विपरीत परिस्थितियों में भी शांत अविचल रहने वाले, प्रेम एवं करूणा के मूर्तवान स्वरूप होते है। इनमें सतोगुण अपनी पराकाष्ठा में विद्यमान रहता है। इस लेश्या वाले व्यक्ति की समानता गीता में वर्णित 'स्थित प्रज्ञ' से देखी जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने में शुक्ल लेश्या को संवर्धित एवं विकसित करने का प्रयास करें जिससे हम सभी साथ–साथ इस संकट से मुक्त हो सकें।

यदि हम जैन दर्शन में विवेचित लेश्या को देखें तो स्पष्ट है कि सामान्य रूप से मानव स्वरूप को व्यावहारिक दृष्टि में उपर्युक्त छह श्रेणियों में रखा जा सकता है। उपर्युक्त छह प्रकार की लेश्याएँ मानव के ***वास्तविक स्वरूप उसके ज्ञाता स्वरूप को आवृत्त कर देती है और व्यक्ति उस रूप में हमें प्रतीत होने लगता है जो वह नहीं होता है।***

जैन दर्शन मनुष्य के व्यवहार से जुड़ा चिंतन है इसलिए मनुष्य के लेश्याओं द्वारा आवृत्त स्वरूप की विवेचना करके वह यह स्पष्ट करता है कि यदि हम चाहें तो इस आवृत्त व्यवहारिक स्वरूप का अतिक्रमण करके अपने वास्तविक स्वरूप को अनुभूत कर सकते हैं। इस हेतु आवश्यकता इस बात की है हम कोरोना संकट में प्रथम तीन प्रकार की लेश्याओं–कृष्ण, नील एवं कापोत को छोड़े एवं अन्तिम–पीत, पद्म एवं शुक्ल लेश्या को ग्रहण करे, जिससे वर्तमान संकट का न केवल सामना कर सकें बल्कि अपने साथ–साथ अन्य सभी मनुष्यों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण में सहयोग देने में भी सफल हो सकें।

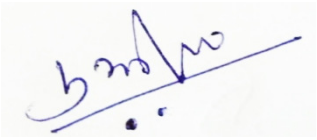

सुशील कुमार तिवारी
(विशेष कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।